W/R

न्यायालय राजस्व मण्डल राजस्थान, अजमेर

निगरानी / टीए / 3304 / 2012 / जिला जयपुर

1— लाला पुत्र स्व. श्री चतरा
2— रामेश्वर पुत्र स्व. श्री चतरा
3— हनूमान पुत्र स्व. श्री चतरा
4— श्रीमती कसनी देवी पत्नी स्व. श्री जगन्नाथ
5— सरजू देवी पुत्री स्व. श्री जगन्नाथ
6— सुशीलकुमार पुत्र स्व. श्री जगन्नाथ
समस्त जाति जाट निवासी गोरवाला की कोठी, ग्राम बोयतावाला, तहसील व जिला जयपुर।

.....प्रार्थीगण

बनाम

1— भुआना पुत्र श्री उदा जाति जाट निवासी ग्राम बोयतावला तहसील व जिला जयपुर हाल निवासी ग्राम आछोजाई तहसील आमेर जिला जयपुर।
2— राजस्थान सरकार जरिये तहसीलदार तहसील व जिला जयपुर।

.....अप्रार्थीगण

एकल—पीठ
श्री मूलचन्द मीणा, सदस्य

उपस्थित :
श्री प्रदीप शर्मा एवं श्री सत्यनारायण, अभिभाषकगण प्रार्थी।
श्री एस.के.शर्मा अभिभाषक अप्रार्थी।

आदेश

दिनांकः— 21 / 10 / 2013

1— हस्तगत निगरानी याचिका न्यायालय उपखंड अधिकारी प्रथम जयपुर (अधीनस्थ न्यायालय) द्वारा पारित आदेश दिनांक 09—04—2012 के विरूद्ध राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 (संक्षेप में 'अधिनियम, 1955') की धारा 230 के अन्तर्गत प्रस्तुत की गयी है।

2— प्रकरण के सुसंगत तथ्य संक्षेप में इस प्रकार है कि वादीगण / प्रार्थीगण ने एक राजस्व वाद अधिनियम 1955 के अन्तर्गत वास्ते घोषणा, दुरूस्ती इंद्राज व स्थाई निषेधाज्ञा अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया। प्रतिवादीगण व उनके अभिभाषक के उपस्थित नही होने पर दिनांक

26–2–03 को अन्य प्रतिवादीगण के साथ प्रतिवादी संख्या–17 / वर्तमान अप्रार्थी भुवाना के विरूद्ध एकपक्षीय कार्यवाही का आदेश पारित किया गया। उक्त एक पक्षीय कार्यवाहीं को निरस्त कराने हेतु अप्रार्थी भुवाना द्वारा अधीनस्थ न्यायालय में आदेश 9 नियम 7 सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया, जिस पर वादीगण / प्रार्थीगण द्वारा आपत्ति प्रस्तुत की गयी और अधीनस्थ न्यायालय ने दोनों पक्षों को सुन कर अपने आलोच्य आदेश दिनांक 09–04–2012 द्वारा उक्त आदेश 9 नियम 7 का प्रार्थनापत्र स्वीकार कर एकपक्षीय कार्यवाही के आदेश दिनांक 26–02–2003 को अपास्त कर दिया। अधीनस्थ न्यायालय के उक्त आदेश दिनांक 09–04–2012 से व्यथित होकर वादीगण / प्रार्थीगण द्वारा हस्तगत निगरानी मण्डल में प्रस्तुत की गई है।

3– दिनांक 10–10–2013 को सर्किट बैंच कैम्प जयपुर में विद्वान अभिभाषक उभय पक्ष की बहस सुनी गयी।

4– विद्वान अभिभाषक प्रार्थीगण ने निगरानी प्रार्थना पत्र में वर्णित तथ्यों को दोहराते हुये बहस में अभिकथन किया कि अप्रार्थी / प्रतिवादी संख्या–17 द्वारा एकपक्षीय कार्यवाही को अपास्त कराने के लिये आदेश 9 नियम 7 सिविल प्रक्रिया संहिता का प्रार्थनापत्र लगभग 8 साल विलम्ब से प्रस्तुत किया था और विलम्ब का कोई सन्तोषजनक स्पष्टीकरण भी प्रस्तुत नहीं किया था, किन्तु अधीनस्थ न्यायालय बिना समुचित कारण के भी उक्त मियाद बाहर प्रार्थनापत्र को स्वीकार कर एकपक्षीय कार्यवाही को अपास्त कर दिया। न्यायिक दृष्टान्त– 1994 WLC (Raj.) 623, 2000 WLC (Raj.) 638, 2007 Civil Court Cases 317 (Raj.) और 1999 Civil Court Cases 634 (Raj.) प्रस्तुत कर विद्वान अभिभाषक का तर्क है कि अप्रार्थी तामील के बावजूद स्वयं अपनी लापरवाही से न्यायालय में अनुपस्थित रहा था, जिसके आधार पर एकपक्षीय कार्यवाही का आदेश दिनांक 26–02–2003 पारित किया गया था। अब बिना किसी समुचित आधार के आदेश 9 नियम 7 सिविल प्रक्रिया संहिता का प्रार्थनापत्र स्वीकार करके अधीनस्थ न्यायालय द्वारा क्षेत्राधिकार एवं विधि सम्बन्धी त्रुटि की गयी है, अतः निगरानी स्वीकार करके आलोच्य आदेश दिनांक 09–04–2003 को अपास्त किया जावे।

5– उपरोक्त तर्को का विरोध करते हुये विद्वान अभिभाषक अप्रार्थी ने अभिकथन किया कि उपखंड अधिकारी ने अप्रार्थी का ग्रामीण परिवेश का, अनपढ एवं न्यायिक पेचीदगियों से अनजान होना मान कर न्यायहित में प्रतिवादी / अप्रार्थी को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर देने के लिये प्रार्थना पत्र आदेश 9 नियम 7 सिविल प्रक्रिया संहिता को स्वीकार किया है। विलम्ब के लिये प्रस्तुत स्पष्टीकरण को स्वीकार करना व एकपक्षीय कार्यवाही को समाप्त करना न्यायालय का विवकाधीन अधिकार है। उक्त विवेकाधीन अधिकार का सकारात्मक उपयोग करते हुये अधीनथ न्यायालय ने एकपक्षीय काग्रवाही को अपास्त किया है। अधिनियम, 1955 की धारा 230 के तहत निगरानी का दायरा अत्यन्त सीमित है ओर आलोच्य आदेश दिनांक 09–04–2012 में विधि अथवा क्षेत्राधिकार सम्बन्धी ऐसी कोई त्रुटि नहीं है

जिसके आधार पर उक्त आदेश में हस्तक्षेप अपेक्षित हो। अतः निगरानी सारहीन होने से खारिज की जावे।

6— मैने दोनों पक्षों की बहस पर गहनता से मनन किया और विचारण न्यायालय द्वारा पारित आलोच्य आदेश दिनांक 09—04—2012 का अवलोकन किया। प्रतिवादी संख्या 17 /वर्तमान अप्रार्थी का सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 नियम 7 का प्रार्थनापत्र स्वीकार करते हुये विचारण न्यायालय का निष्कर्ष एवं निर्णय इस प्रकार हैः—

> ***"प्रार्थी ग्रामीण परिवेश का तथा अनपढ व्यक्ति है, जिसे कानूनी पेचीदगियों की जानकारी होना असम्भव है। उसके अधिवक्ता द्वारा लापरवाही करने का दण्ड प्रार्थी को नहीं मिलना चाहिये। प्रार्थी वाद में आवश्यक पक्षकार है तथा वाद के निर्णय से पूर्व यदि प्रार्थी/ प्रतिवादी संख्या 17 को भी अपना पक्ष प्रस्तुत किये जाने का अवसर प्रदान किया जाता है, तो वह न्यायहित में होगा। अतः प्रार्थी का प्रार्थनापत्र अन्तर्गत आदेश 9 नियम 7 जाब्ता दीवानी न्यायहित में स्वीकार किया जाता है तथा प्रार्थी/प्रतिवादी संख्या 17 के विरुद्ध पारित एकपक्षीय कार्यवाही का आदेश दिनांक 20—02—2003 को निरस्त किया जाता है।"***

7— उपरोक्तानुसार पारित आलोच्य आदेश दिनांक 09—04—2012 के अवलोकन से जाहिर है कि विचारण न्यायालय द्वारा स्पष्ट कारण अंकित करते हुये आदेश 9 नियम 7 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रार्थनापत्र को न्यायहित में, इस आधार पर स्वीकार किया है कि प्रार्थी/ प्रतिवादी भुवाना ग्रामीण पृष्ठभूमि का अनपढ व्यक्ति है, और विधिक पेचीदगियों से अनजान है। विचारण न्यायालय का यह भी मत है कि अधिवक्ता की गलती का दण्ड प्रार्थी को नही दिया जाना चाहिये।

8— हमारे समक्ष विद्वान अभिभाषक निगरानीकर्ता द्वारा कुछ न्यायिक दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पक्षकार को जागरुक रह कर अपना पक्ष प्रस्तुतीकरण अथवा प्रतिरक्षण करना चाहिये और अधिवक्ता द्वारा सूचना नहीं देना विलम्ब को क्षमा करने का वैधानिक कारण नहीं हो सकता है। 1994 WLC (Raj.) 623 में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विलम्ब के लिये पर्याप्त एवं आवश्यक कारणों के अभाव में विलम्ब को क्षमा करना उचित नहीं माना था। माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय का भी यह मत था कि विलम्ब को क्षमा करने का यह कारण सन्तोषजनक नहीं है कि अधिवक्ता द्वारा सुनवाई की दिनांक एवं पारित आदेश बाबत सूचना नहीं दी गयी थी। प्रार्थी को स्वयं जागरुक रहना चाहिये था। 2000 WLC (Raj.) 638 के प्रकरण में 495 दिवस का विलम्ब था। माननीय उच्च न्यायालय में प्रस्तुत निगरानी के साथ विलम्ब को क्षमा कराने के लिशे मियाद अधिनियम की धारा 5 का प्रार्थनापत्र भी प्रस्तुत नहीं किया गया था, अपितु बाद में ऐसा प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें यह कारण अंकित किया गया कि प्रार्थी बाहर रहता है, इसलिये उसे अपील के निर्णय की जानकारी नहीं हुई और उसके अधिवक्ता द्वारा भी कोई सूचना नहीं दी गयी। इस प्रकरण में विलम्ब को

क्षमा करने का प्रार्थनापत्र माननीय उच्च न्यायालय ने इस मत के साथ खारिज किया कि लम्बे समय तक अधिवक्ता से कोई सूचना नहीं लेना व 495 दिन तक अपने अपील प्रकरण की कोई सुध नहीं लेना सतत पैरवी नही है और प्रार्थी अपने प्रकरण के प्रति लापरवाह रहा है। 2007 Civil Court Cases 317 (Raj.) में 12 स्थगन–पेशियों के बाद अधिवक्ता द्वारा हिदायत नहीं (no instructions) की पैरवी की गयी और प्रकरण में एकपक्षीय डिक्री पारित कर दी गयी। प्रार्थी द्वारा एकपक्षीय डिक्री को अपास्त कराने हेतु प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया जो बाद सुनवाई खारिज कर दिया गया। इस प्रकरण में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादित किया गया कि प्रार्थी के लिये यह आधार उपलब्ध नहीं है कि अधिवक्ता द्वारा हिदायत नहीं पैरवी (no instructions pleading) और एकपक्षीय कार्यवाही की सूचना नहीं दी गयी थी। वादरत पक्षकार को अपने हितों व हकूक की स्वयं रक्षा करनी चाहिये थी और प्रकरण की अद्यतन जानकारी हेतु अधिवक्ता से सम्पर्क में रहना चाहिये था। 1999 Civil Court Cases 634 (Raj.) में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि जब प्रतिवादी को सुनवाई की दिनांक की जानकारी थी और उसके पास न्यायालय में उपस्थित होने के लिये पर्याप्त समय था तो तामील की अनियमिमता को एकतरफा आदेश को अपास्त करने का विधिक व पर्याप्त कारण नहीं माना जा सकता है।

9– विद्वान अभिभाषक प्रार्थी द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त सभी न्यायिक दृष्टान्तों के प्रकरण ऐसे हैं जिनमें अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विलम्ब के कारणों को अपर्याप्त मान कर एकपक्षीय कार्यवाही / आदेश को अपास्त करने का प्रार्थनापत्र खारिज किया था। जब प्रकरण माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष आये तो अधीनस्थ न्यायालय के मत को सही मानते हुये माननीय उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया गया।

10– वस्तुत विलम्ब को क्षमा करने व एकतरफा कार्यवाही को अपास्त करने के प्रश्न पर प्रकरण विशेष की परिस्थितियों व पक्षकारान के व्यवहार के अनुसार उच्च स्तरीय न्यायालयों के भिन्न भिन्न मत रहे हैं। हस्तगत प्रकरण में निगरानीकर्ता का एकमात्र विधिक आधार यह है कि प्रतिवादी संख्या 17 द्वारा एकतरफा कार्यवाही के आदेश दिनांक 26–02–2003 को अपास्त कराने हेतु प्रार्थनापत्र अत्यधिक विलम्ब से प्रस्तुत किया है और ऐसे विलम्ब का कोई सन्तोषजनक कारण नहीं है। जहां तक सन्तोषजनक कारण का प्रश्न है, प्रतिवादी भुवाना / वर्तमान अप्रार्थी ने अपने आदेश 9 नियम 7 सिविल प्रक्रिया के प्रार्थनापत्र में यह कारण अंकित किया है कि उसने अपनी तरफ से वकालतनामा अपने अधिवक्ता को दे दिया था किन्तु अधिवक्ता द्वारा बताया गया कि प्रकरण तामील में है। बाद में प्रकरण में एकपक्षीय कार्यवाही हो गयी। जिसकी भी जानकारी अधिवक्ता द्वारा समय पर नहीं दी गयी। जब अन्य पक्षकारान ने बताया कि उन्होने जवाबदावा प्रस्तुत कर दिया, तब अधिवक्ता से मिलने पर एकपक्षीय कार्यवाही की जानकारी हुई। अधीनस्थ न्यायालय इस वर्णित कारण से इस आधार पर सन्तुष्ट है कि प्रतिवादी / वर्तमान अप्रार्थी ग्रामीण परिवेश का अनपढ व्यक्ति है जो विधिक पेचीदगियों

से अनजान है। उसने अपने अधिवक्ता को वकालतनामा दे दिया था किन्तु अधिवक्ता द्वारा अदालत में उपस्थिति नहीं दी और ना ही अप्रार्थी प्रतिवादी को सूचित किया। मेरा मत है कि विचारण न्यायालय का यह अभिमत गलत नहीं है। मैं यहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रफीक एवं अन्य के प्रकरण AIR 1981 SC 1400 में दिये गये अभिमत का अनुसरण करना उचित समझता हूँ जिसमें हमारी न्यायिक प्रणाली में अधिवक्तागण की भूमिका व व्यवहार पर टिप्पणी करते हुये यह प्रतिपादित किया गया है कि वादरत पक्षकार अपने अभिभाषक पर पूरा विश्वास करते हैं और अगर किसी अभिभाषक द्वारा गलती की गयी है तो ऐसी गलती का दण्ड पक्षकार को नहीं दिया जाना चाहिये। सुलभ संदर्भ के लिये माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित उक्त निर्णय दिनांक 16–04–1981 का अनुच्छेद संख्या–3 नीचे उदधृत किया जा रहा हैं:–

> *"3. The disturbing feature of the case is that under our present adversary legal system where the parties generally appear through their advocates, the obligation of the parties is to select his advocate, brief him, pay the fees demanded by him and then trust the learned advocate to do the rest of the things. The party may be a villager or may belong to a rural area and may have no knowledge of the court's procedure. After engaging a lawyer, the party may remain supremely confident that the lawyer will look after his interest. At the time of the hearing of the appeal, the personal appearance of the party is not only not required but hardly useful. Therefore, the party having done everything in his power to effectively participate in the proceedings can rest assured that he has neither to go to the High Court to inquire as to what is happening in the High Court with regard to his appeal nor is he to act as a watchdog of the advocate that the latter appears in the matter when it is listed. It is no part of his job. Mr. A.K. Sanghi stated that a practice has grown up in the High Court of Allahabad amongst the lawyers that they remain absent when they do not like a particular Bench. Maybe he is better informed on this matter. Ignorance in this behalf is our bliss. Even if we do not put our seal of imprimatur on the alleged practice by dismissing this matter which may discourage such a tendency, would it not bring justice delivery system into disrepute. What is the fault of the party who having done everything in his power and expected of him, would suffer because of the default of his advocate. If we reject this appeal, as Mr. A.K. Sanghi invited us to do, the only one who would suffer would not be the lawyer who did not appear but the party whose interest he represented. The problem that agitates us is whether it is proper that the party should suffer for the inaction, deliberate omission, or misdemeanour of his agent. The answer obviously is in the negative. Maybe that the learned advocate absented himself deliberately or intentionally. We have no material for ascertaining that aspect of the matter. We say nothing more on that aspect of the matter. However, we cannot be a party to an innocent party suffering injustice merely because his chosen advocate defaulted. Therefore, we allow this appeal, set aside the order of the High Court both dismissing the appeal and refusing to recall that order. We direct that the appeal be*

restored to its original number in the High Court and be disposed of according to law. If there is a stay of dispossession it will continue till the disposal of the matter by the High Court. There remains the question as to who shall pay the costs of the respondent here. As we feel that the party is not responsible because he has done whatever was possible and was in his power to do, the costs amounting to Rs.200/- should be recovered from the advocate who absented himself. The right to execute that order is reserved with the party represented by Mr. A.K.Sanghi."

मेरा यह स्पष्ट मत है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त उपरोक्त अभिमत हमारी न्याय प्रणाली व अधिवक्ताओं की भूमिका का सही चित्रण करता है और सुसंगत प्रकरणों में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र के पक्षकारों के प्रकरणों में विवेकाधीन अधिकारों का उपयोग करते हुये न्यायालयों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के इस अभिमत को ध्यान में रखना चाहिये।

11— माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रामजी गुप्ता एवं अन्य बनाम गोपालकृष्ण अग्रवाल (मृतक) एवं अन्य के प्रकरण [2013 STPL (Web) 299 SC] में प्रतिपादित किया गया है कि एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करना न्यायालय का विवेकाधीन अधिकार है। मेरा मत है कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपने विवेकाधीन अधिकारों का उपयोग करते हुये पारित किसी भी आदेश में तब तक हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिये, जब तक कि पारित आदेश विधिक प्रावधानों के विपरीत और प्रकरण के गुणावगुण की दृष्टि से किसी पक्ष के लिये पूर्वाग्रही (prejudiced) नहीं हो। हस्तगत प्रकरण में प्रतिवादी संख्या 17 / वर्तमान अप्रार्थी भुवाना के विरुद्ध की गयी एकतरफा कार्यवाही को समाप्त करके उसे अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया है। इस प्रकार यह एक सकारात्मक आदेश है जिससे एक पक्षकार को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का न्यायसंगत अवसर मिलेगा। वादी / वर्तमान प्रार्थी लाला आदि को अपना वाद स्वयं अपने साक्ष्य एवं सबूतों से सिद्ध करना है और प्रतिवादी संख्या 17 अथवा अन्य किसी भी प्रतिवादी को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर देने मात्र से वादी का वाद ना तो कमजोर होने वाला है और ना ही प्रतिवादी को न्यायहित में इस प्रकार दिये गये अवसर से उसे कोई नुकसान होने वाला है। इसलिये मेरा मत है कि जब अधीनस्थ न्यायालय ने सकारात्मक रुख अपनाते हुये आलोच्य आदेश दिनांक 09—04—2012 द्वारा प्रतिवादी संख्या 17 भुवाना को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर दिया है तो प्रतिवादीगण / वर्तमान निगरानीकर्ता को ऐसे सकारात्मक आदेश का विरोध करने का कोई आधार उपलब्ध नहीं है।

12— समय समय पर उच्च स्तरीय न्यायालयों / माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित न्यायिक निर्णयों से विधि की सुस्थापित स्थिति यह है कि मियाद सम्बन्धी कानून न्याय के दरवाजे बन्द करने के लिये नहीं है, अपितु यह सुनिश्चित करने के लिये है कि पक्षकारान मुकदमों के निस्तारण में जानबूझ कर विलम्बकारी व्यवहार नहीं करें। इस सम्बन्ध में मैं माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एन. बालाकृष्णन बनाम एम. कृष्णामूर्ति के प्रकरण

[AIR 1998 SC 3222] में पारित निर्ण्य दिनांक 03–09–1998 के सुसंगत भाग को उदधृत करना उचित समझता हूँ, जो निम्न प्रकार हैः–

> *"Rule of limitation are not meant to destroy the right of parties. They are meant to see that parties do not resort to dilatory tactics, but seek their remedy promptly. The object of providing a legal remedy is to repair the damage caused by reason of legal injury. Law of limitation fixes a life-span for such legal remedy for the redress of the legal injury so suffered. Time is precious and the wasted time would never revisit. During efflux of time newer causes would sprout up necessitating newer persons to seek legal remedy by approaching the courts. So a life span must be fixed for each remedy. Unending period for launching the remedy may lead to unending uncertainty and consequential anarchy. Law of limitation is thus founded on public policy. It is enshrined in the maxim interest reipublicae up sit finis litium (it is for the general welfare that a period be putt to litigation). Rules of limitation are not meant to destroy the right of the parties. They are meant to see that parties do not resort to dilatory tactics but seek their remedy promptly. The idea is that every legal remedy must be kept alive for a legislatively fixed period of time.*
>
> *A court knows that refusal to condone delay would result foreclosing a suitor from putting forth his cause. There is no presumption that delay in approaching the court is always deliberate. This Court has held that the words "sufficient cause" under Section 5 of the Limitation Act should receive a liberal construction so as to advance substantial justice vide Shakuntala Devi Jain Vs. Kuntal Kumari [AIR 1969 SC 575] and State of West Bengal Vs. The Administrator, Howrah Municipality [AIR 1972 SC 749]. It must be remembered that in every case of delay there can be some lapse on the part of the litigant concerned. That alone is not enough to turn down his plea and to shut the door against him. If the explanation does not smack of mala fides or it is not put forth as part of a dilatory strategy the court must show utmost consideration to the suitor. But when there is reasonable ground to think that the delay was occasioned by the party deliberately to gain time then the court should lean against acceptance of the explanation. While condoning delay the Could should not forget the opposite party altogether. It must be borne in mind that he is a looser and he too would have incurred quiet a large litigation expenses. It would be a salutary guideline that when courts condone the delay due to laches on the part of the applicant the court shall compensate the opposite party for his loss."*

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त अभिमत की रोशनी में हस्तगत प्रकरण में यह परीक्षण आवश्यक है कि प्रतिवादी संख्या 17 / वर्तमान अप्रार्थी द्वारा विलम्ब का जो कारण दिया गया है क्या वह असदभावी *(mala fide)* है और केवल वाद के निस्तारण को विलम्बित करने के लिये की गयी कार्यवाही है? प्रतिवादी संख्या 17 द्वारा अपने आदेश 9 नियम 7 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रार्थनापत्र में एक सरल सा कारण अंकित किया गया है कि उसके द्वारा

अधिवक्ता का विश्वास किया गया, किन्तु अधिवक्ता द्वारा ना तो वकालतनामा व जवाबदावा प्रस्तुत किया और ना ही एकपक्षीय कार्यवाही बाबत कभी सूचित किया गया। इसके अलावा उक्त आदेश 9 नियम 7 का प्रार्थनापत्र प्रस्तुत करने के साथ ही प्रतिवादी संख्या 17 द्वारा अपना प्रतिवाद (counter claim) भी न्यायालय में प्रस्तुत कर दिया गया है। प्रतिवादी भुवाना के उक्त प्रतिवाद के अवलोकन से यह जाहिर है कि वह वादग्रस्त भूमि में अपनी हितबद्धता साबित करने के लिये कटिबद्ध है और यह मानने का कोई कारण नहीं है कि प्रतिवादी भुवाना उक्त वाद के निस्तारण को जानबूझ कर विलम्बित करना चाहता है। इसके विपरीत विचारण न्यायालय की पत्रावली की आदेशिका को देखने से यह निष्कर्ष निकाले जाने के पर्याप्त कारण हैं कि स्वयं वादी पक्ष ही अपने वाद का शीघ्र निस्तारण नहीं चाहता है। कुछ महत्वपूर्ण पड़ाव निम्न प्रकार हैंः—

(1) विचारण न्यायालय में वाद दिनांक 26—11—2002 को दायर हुआ है, जिसमें प्रतिवादी संख्या 17 भुवाना व कुछ अन्य प्रतिवादीगण के विरुद्ध दिनांक 26—02—2003 को एकपक्षीय कार्यवाही का आदेश हुआ। प्रतिवादी संख्या 19 की तरफ से दिनांक 28—02—2003 को और प्रतिवादी संख्या 1 से 5 की तरफ से दिनांक 06—03—2003 को जवाबदावा प्रस्तुत कर दिया गया। विवाद्यक दिनांक 26—04—2005 को विरचित किये गये और प्रकरण साक्ष्य वादी में नियत किया गया।

(2) विवाद्यक विरचित होने के बाद लगभग दो साल तक वादी पक्ष द्वारा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं की गयी। दिनांक 04—05—2007 को प्रतिवादी संख्या 1 से 5 की तरफ से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 17 नियम 3 का प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया कि वादी को साक्ष्य के निर्देश व 23 अवसर देने के बाद भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं की गयी है, अतः वाद खारिज किया जावे।

(3) उक्त आदेश 17 नियम 3 के प्रार्थनापत्र दिनांक 04—05—2007 के बाद भी वादी पक्ष द्वारा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं की गयी, अपितु विवाद्यक विरचित होने के बाद लगभग दो साल तीन माह बाद दिनांक 16—07—2007 को वादी पक्ष द्वारा आदेश 7 नियम 14 का प्रार्थनापत्र प्रस्तुत करके अतिरिक्त दस्तावेजात प्रस्तुत किये गये। उक्त प्रार्थनापत्र का जवाब प्रतिवादी संख्या 1 से 5 ने दिनांक 30—03—2010 को लगभग 3 साल बाद प्रस्तुत किया। न्यायालय द्वारा उक्त आदेश 7 नियम 14 का प्रार्थनापत्र दिनांक 25—05—2010 को स्वीकार करके पुनः प्रकरण को साक्ष्य वादी में रखा गया। फिर भी वादी पक्ष द्वारा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।

(4) इसी बीच प्रतिवादी संख्या 17 भुवाना द्वारा दिनांक 23—03—2011 को आदेश 9 नियम 7 का प्रार्थनापत्र प्रस्तुत कर एकपक्षीय आदेश दिनांक 26—02—2003 को अपास्त करने का अनुरोध किया गया और अलग से प्रतिवाद (counter claim) भी प्रस्तुत किया गया। निश्चित रुप से आदेश 9 नियम 7 का यह प्रार्थनापत्र विलम्बित था, किन्तु इस 8 साल की अवधि में वादी पक्ष की उदासीनता के कारण वाद में कोई प्रगति नहीं हुई थी।

(5) दिनांक 04–02–2011 तक भी वादी पक्ष की तरफ से साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करने पर प्रतिवादी संख्या 1 से 5 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 17 नियम 3 के तहत अपना दूसरा प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया कि 70 अवसर देने के बाद भी वादी अपनी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर रहा है, अतः दावा खारिज किया जावे।

(6) इसके बाद दिनांक 05–05–2011 को साक्ष्य के रुप में वादी पक्ष द्वारा वादी लाला का शपथपत्र अन्तर्गत आदेश 18 नियम 4 सिविल प्रक्रिया संहिता प्रस्तुत किया गया, जो विवाद्यक विरचना के लगभग 6 साल विलम्ब से है। इसके बाद 23–05–2011 को व 22–06–2011 को अवसर देने के बाद भी वादी द्वारा कोई अन्य साक्ष्य प्रस्तुत नहीं की गयी।

(7) दिनांक 19–12–2011 को वादी पक्ष द्वारा प्रतिवादी भुवाना के आदेश 9 नियम 7 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रार्थनापत्र का जवाब 9 महिने बाद प्रस्तुत किया गया।

(8) विचारण न्यायालय ने आदेश दिनांक 09–04–2012 द्वारा प्रतिवादी भुवाना का उक्त आदेश 9 नियम 7 का प्रार्थनापत्र स्वीकार किया है जिसके विरुद्ध वादी पक्ष द्वारा हस्तगत निगरानी इस आधार पर प्रस्तुत की गयी है कि अत्यधिक विलम्बित व मियाद बाहर प्रार्थनापत्र को बिना समुचित कारण के स्वीकार किया गया है।

मैं निस्सन्देह यह मानता हूँ कि प्रतिवादी भुआना द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 नियम 7 का प्रार्थनापत्र मियाद बाहर प्रस्तुत किया गया है किन्तु उपरोक्त वर्णित घटनाक्रम से यह भी साबित है कि इस 8 साल की अवधि में वादी पक्ष की उदासीनता के कारण दावा विवाद्यक रचना के अलावा एक कदम भी आगे नहीं बढा है। जब वादी पक्ष खुद ही उदासीन है और अपने वाद का शीघ्र निस्तारण कराने में रुचि नहीं रखता है तो उसे यह अधिकार नहीं दिया जा सकता है कि जब अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपने विवेकाधीन अधिकार का न्यायहित में सकरात्मक उपयोग करते हुये प्रतिवादी को पक्ष प्रस्तुत करने हेतु अवसर दिया गया है तो ऐसे आदेश का विरोध निगरानी के माध्यम से कर सके।

13– हस्तगत निगरानी राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 की धारा 230 के अन्तर्गत प्रस्तुत की गयी है। निगरानी का दायरा (scope) समझने के लिये उक्त धारा 230 का अवलोकन कर लेना उचित रहेगा, जो निम्न प्रकार हैः–

> ***"230. Power of the Board to call for cases.-*** *The Board may call for the record of any case decided by any subordinate court in which no appeal lies either to the Board or to a civil court under section 239 and if such court appears-*
>
> *(a) to have exercised jurisdiction not vested in it by law; or*
>
> *(b) to have failed to exercise jurisdiction so vested; or*
>
> *(c) to have acted in the exercise of its jurisdiction illegally or with material irregularity,*
>
> *the Board may pass such orders in the case as it thinks fit."*

उपरोक्त धारा 230 के अवलोकन से जाहिर है कि निगरानी का दायरा (scope) अत्यन्त सीमित है और आलोच्य आदेश में निगरानी के माध्यम से केवल उस स्थिति में हस्तक्षेप किया जा सकता है, जबकि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा आलोच्य आदेश पारित करने में ऐसे अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर लिया हो जो न्यायालय में निहित ही नहीं किया गया है, अथवा निहित क्षेत्राधिकार का गलत प्रयोग किया गया हो, अथवा क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय गंभीर अनिमितता की गयी हो। चूंकि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा आलोच्य आदेश दिनांक 09–04–2012 कारण अंकित करते हुये, न्यायहित में पारित किया है जो ऐसा सकारात्मक आदेश है जिससे हितबद्ध पक्षकार को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर मिलेगा, जो विपक्षी के हितों के विरुद्ध पूर्वाग्रही (prejudiced) नहीं है, और जिसके कारण वाद की प्रगति पर कोई सारभूत विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। निगरानीकर्ता अपने निगरानी प्रार्थनापत्र में अथवा दौराने बहस यह बताने में सफल नहीं रहा है कि विचारण न्यायालय द्वारा किस प्रकार क्षेत्राधिकार सम्बन्धी अथवा विधि सम्बन्धी त्रुटि की है। इसके अलावा ऐसा आदेश पारित करने बाबत अधीनस्थ न्यायालय की अधिकारिता भी प्रश्नगत नहीं है। एकमात्र बिन्दु मियाद का है, जिस पर पूर्व में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रामजी गुप्ता एवं अन्य बनाम गोपालकृष्ण अग्रवाल (मृतक) एवं अन्य के प्रकरण 2013 STPL (Web) 299 SC, रफीक एवं अन्य के प्रकरण AIR 1981 SC 1400 और एन. बालाकृष्णन बनाम एम. कृष्णामूर्ति के प्रकरण AIR 1998 SC 3222 मे प्रतिपादित सिद्धान्तों की रोशनी में विचार किया जा चुका है कि वर्णित कारणों से सन्तुष्ट हो कर मियाद सम्बन्धी स्पष्टीकरण को स्वीकार करना व एकपक्षीय कार्यवाही को अपास्त करना न्यायालय का विवेकाधीन अधिकार है जिसमें तब तक हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिये जब तक कि गंभीर अनियमितता नहीं कर दी गयी हो। हस्तगत प्रकरण में ऐसी कोई गंभीर अनिमितता भी दृष्टव्य नहीं है। मेरा यह भी मत है कि विद्वान अभिभाषक निगरानीकर्ता द्वारा प्रस्तुत न्यायिक दृष्टान्तों–1994 WLC (Raj.) 623, 2000 WLC (Raj.) 638, 2007 Civil Court Cases 317 (Raj.) और 1999 Civil Court Cases 634 (Raj.) महत्वपूर्ण एवं सम्माननीय है किन्तु उनको माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्तानुसार प्रतिपादित सिद्धान्तों के विरुद्ध अधिमान (weightage) नहीं दिया जा सकता है।

14– उपरोक्त विवेचन से मेरा यह सुविचारित मत है कि हस्तगत निगरानी सारहीन होने से खारिज किये जाने योग्य है, अतः परिणामतः निगरानी एतदद्वारा खारिज की जाती है।

आदेश खुले न्यायालय में सुनाया गया।

(मूलचन्द मीणा)
सदस्य